Sanchar Sutra | ISSN No. 2584-1769

पंचमहायज्ञ की आधार-शिला: नारी

श्रुति रानी

स्नातक शोधार्थी

मिरांडा हाउस महाविद्यालय:

दिल्ली विश्वविद्यालय: नई दिल्ली ११०००७

सारांश

भारतीय संस्कृति में नारी के बिना कोई भी धार्मिक अनुष्ठान, याज्ञिक क्रियाएँ व सामाजिक जीवन की सुन्दर कल्पना भी संभव नहीं है। नारी कर्म में क्रिया एवं धर्म में धुरी के रूप में सदैव उपस्थित है। वेदों में वर्णित यज्ञ का आधार नारी ही है, नारी के बिना यज्ञ संभव ही नहीं है। रामायण में भी भगवान श्री राम अपनी अर्धांगिनी सीता के बिना अश्वमेघ यज्ञ नहीं कर सकते थे, जिसका समाधान माता सीता की स्वर्ण मूर्ति को यज्ञ में बिठाया गया था तब जाकर उनका यज्ञ सुफल हुआ था। अतः नारी प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान एवं यज्ञिक क्रियाओं को सुफल मनोरथ प्रदान करने वाली, सदैव सम्माननीय होती है। अतः पुरुष को चाहिए कि वो नारी को सदैव प्रसन्न रखे चाहे वह पत्नी रूप में हो अथवा माता अथवा बहन अथवा कोई स्त्री ही क्यों न हो।

भूमिका

भारतीय संस्कृति में नारी के बिना कोई भी धार्मिक अनुष्ठान, याज्ञिक क्रियाएँ व सामाजिक जीवन की सुन्दर कल्पना भी संभव नहीं है। नारी कर्म में क्रिया एवं धर्म में धुरी के रूप में सदैव उपस्थित है। नारी का तेजस्वी स्वरूप तो वैदिक वाङ्मय स्वयं ही सार्थक करता

है क्योंकि यहाँ नारी को ऋग्वेद में यशस्वती एवं संजया के नाम से, यजुर्वेद में देवी, इडा एवं सुभगा तथा अथर्ववेद में सुमंजली के नाम से सुशोभित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में नारी को योषा पद नारी की पुरुष के साथ सायुज्यपरक का द्योतक है। जिस प्रकार वेदी का यज्ञ में महत्वपूर्ण स्थान है उसी प्रकार योषा का गृहस्थ आश्रम में महत्वपूर्ण स्थान है। जब पुरुष और स्त्री विवाह संस्कार उपरांत गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं तो उन्हें प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने का विधान हमारे श्रौत एवं स्मार्त ग्रंथों में मिलता है। पँच अर्थात् पांच और महायज्ञ अर्थात् जिन्हें प्रतिदिन संपादित करना है एवं गृहस्थ द्वारा अनुष्ठित इन यज्ञों से वह केवल पापमुक्त नहीं होता वरन् सभी आश्रमों और चराचर जगत् के सम्पूर्ण प्राणियों के महनीय दायित्व को भी वहन करता है। तदितर ये सभी में एक ही आत्मा का दर्शन कराते हैं तथा प्राणीमात्र के प्रति दया व समर्पण का भाव इनमें निहित है। वे पांच यज्ञ हैं-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भीतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।। (मनु० 3/116)

१ ब्रह्मयज्ञ – प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय ही ब्रह्मयज्ञ है। इसके द्वारा व्यक्ति अपनी ज्ञान वृद्धि के प्रति प्रयत्नशील रहता है व उसे स्थिर एवं सुदृढ़ करता है और तत्वतः जानने का प्रयास करता है।

२ देव यज्ञ – सायं प्रातः हवन व संध्यावन्दनादि देवयज्ञ है। इसका सम्पादन करने वाला गृहस्थ इसके माध्यम से चराचर जगत् का धारण व पोषण करता है। यह व्यक्तिगत स्वार्थ तक सीमित न होकर सामाजिक श्रेय के लिए होता है।

३ भूतयज्ञ -इसे वैश्वदेव यज्ञ भी कहते हैं। इसमें सूक्ष्म जीवों व प्राणियों के लिए घर में प्रतिदिन, बनाए जाने वाले अन्न की बलि दी जाती है। ये सभी के प्रति सहिष्णुता व उदारता का प्रतीक है।

४ पितृयज्ञ- मृत पूर्वजों (पितरों) का तर्पण करना पितृयज्ञ है। इसके द्वारा अपने पूर्वजों द्वारा किए गए श्रेष्ठ कार्यों को स्मरण करना तथा उनके द्वारा दी गयी शिक्षा का प्रयोग अपने व्यवहार में कर, सद् – मार्ग पर अग्रसर होने का भाव निहित है। साथ ही अपने से बड़ों के प्रति आदर व सम्मान की भावना इसके द्वारा व्यक्त होती है।

५ अतिथि अथवा नृयज्ञ- इसके मूल में मानवमात्र के प्रति दया व अनुकम्पा की प्रवृत्ति है। इसको वैदिक धर्म में इतना महत्त्व दिया गया है कि स्नातक को 'अतिथि देवो भव' का उपदेश दिया है तथा अतिथि को वैश्वानर अग्नि माना गया है।

ये सारे यज्ञ नारी के बिना अधूरे हैं एवं नारी ही प्रत्येक यज्ञ प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान को पूर्ण करती है।

उद्देश्य

1. इस शोध पत्र के माध्यम से नारी का स्वरूप एवं गरिमा का विश्लेषण वेदों एवं स्मृतिग्रंथों में प्राप्त किया जाएगा।
2. इस पर्यावरण को संतुलित रखने में नारी की भूमिका भूतयज्ञ के द्वारा परिलक्षित हो रही है।
3. समाज को सुव्यवस्थित एवं संगठित रखने में नारी का अति महत्वपूर्ण योगदान है, यह इस शोध पत्र के माध्यम से परिलक्षित किया जाएगा।
4. पंचमहायज्ञ का आधार नारी है, नारी के बिना कोई भी यज्ञ एवं धार्मिक अनुष्ठान संभव नहीं है।
5. वैदिक वाङ्मय का मूल, चारों आश्रमों का आधार गृहस्थ आश्रम एवं नारी ही है, यही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

पद्धति

इस शोध पत्र में वर्णनात्मक पद्धति के द्वारा नारी की भूमिका एवं यज्ञ तथा धार्मिक अनुष्ठान में नारी के महत्त्व को वर्णित किया गया है। इस शोध पत्र के माध्यम से नारी के कर्त्तव्य एवं नारी के विभिन्न-विभिन्न स्वरूप यथा – पत्नी, माता एवं बहन आदि के रूप में कर्तव्यों का वर्णन किया गया है।

परिणाम

इस शोध पत्र के द्वारा हम सब प्राचीन काल में नारी की स्थिति जान सकते हैं एवं यह भी जान सकते हैं कि प्राचीन काल में धर्म का आधार स्वरूप नारी कितनी सम्माननीय एवं आदरणीय थी एवं नारी के बिना पुरुष कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं कर सकता था। पंचमहायज्ञ जो गृहस्थी के लिए मोक्ष का खुला हुआ द्वार है, का आधार भी नारी ही है। अतः यह नारी सशक्तिकरण का एक अनूठा उदाहरण है।

बीज शब्द – पंचमहायज्ञ, यशवती, योषा।

पंचमहायज्ञ की आधार-शिला: नारी

- **यज्ञ**- यज्ञ शब्द की निष्पत्ति यज् धातु में नङ् प्रत्यय करने से हुई है जिसका अर्थ पाणिनि ने देवपूजा, संगतिकरण एवं दान के रूप में किया है। यज्ञ शब्द देवपूजा का द्योतक है अर्थात् देवपूजा ही यज्ञ है। यथा – 'विष्णुर्वै यज्ञः' अथवा 'यज्ञो वै विष्णुः' जैसे पद ऐतरेय ब्राह्मण एवं तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त होते हैं। अतः वह पूजा जिससे देवताओं को प्रसन्न किया जाए, वह यज्ञ है। प्रजापति, विष्णु एवं अग्नि भी यज्ञ ही है।

"वेदमन्त्रैर्देवतामुद्दिश्य द्रव्यस्य दानं यागः। "

वेद मंत्रों के द्वारा देवताओं को उद्देश्य करके द्रव्य का दान करना यज्ञ कहलाता है। अतः याग में 3 मुख्य हैं – देवता, द्रव्य एवं दान। इस प्रकार, देवता के लिए द्रव्य का दान करना यज्ञ है। यहाँ देवता अर्थात् जिसको आप दान दे रहे हो, द्रव्य अर्थात् अपनी कोई भी निधि अथवा मूल्यवान वस्तु, समय अथवा भावना समर्पित करना और दान अर्थात् प्रेमपूर्वक समर्पण भाव से अर्पित करना। अतः यज्ञ वह सब है, जिसमें आप किसी को देवता मानकर उनको अपनी अमूल्य निधि भेंट करते हैं, वह आपका मूल्यवान ज्ञान भी हो सकता है, वह आपका मूल्यवान समय अथवा कोई वस्तु भी हो सकती है, वह सारी क्रियाएँ हो सकती है जो समग्र कल्याण के हित में हों।

मत्स्य पुराण भी यज्ञ की परिभाषा श्रौत सूत्रों की भांति अभिव्यक्त करता है। यथा-

"देवानां द्रव्यहविषां ऋक्-साम-यजुषां तथा।

ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते।।"

वैदिक मंत्र चार प्रकार के होते हैं – १. ऋक् – जो मात्रिक हैं २. यजु: - जो मात्रा बद्ध या छन्दबद्ध तो नहीं होते किन्तु पूर्ण वाक्य के रूप में होते हैं ३. साम – जो गाया जा सके और ४. निगद – इसे प्रैष कहते हैं। वैदिक मंत्रों का प्रयोग श्रौत यज्ञों के लिए अनिवार्य है। वस्तुत: वेदों का उद्भव ही यज्ञों के लिए हुआ है एवं यज्ञ सम्पूर्ण चराचर जगत एवं जीवन का मूल है। वेदों में बार-बार कहा गया है कि –'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'। श्रीमद्भगवद्गीता में भी यज्ञकर्म को जीवन मरण के बंधन से मुक्ति का मार्ग कहा है –

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥ (गीता ३/९)

श्री कृष्ण आगे कहते हैं कि –

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।

ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥ (गीता ४/२४)

अर्थात् जिस यज्ञ में अर्पण (आहुति की प्रक्रिया) ब्रह्म है, हवि (हवन सामग्री) भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा आहुति दी गई है, उस ब्रह्म-कर्म में स्थित रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य फल भी ब्रह्म ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कोई व्यक्ति अपनी चेतना को पूरी तरह से आध्यात्मिक बना लेता है, तो वह सांसारिक कार्यों में भी दिव्य तत्व (ब्रह्म) को देखता है। इस अवस्था में, वह जानता है कि क्रिया, क्रिया करने वाला और परिणाम – सब कुछ परमेश्वर का ही विस्तार है, सभी कर्मों के मूल ब्रह्म ही हैं।

- **<u>गृहस्थ आश्रम एवं पंचमहायज्ञ का विधान</u>**

हमारे श्रुति स्मृति एवं अन्य सूत्रग्रन्थों में चार प्रकार के आश्रम व्यवस्था का वर्णन प्राप्त होता है, वे हैं –

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।

एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ (मनु 6/87)

इस प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं यति यानी संन्यास ये चार आश्रम हैं, जो गृहस्थ से ही उत्पन्न हुए हैं। वाल्मीकिय रामायण में भी गृहस्थ आश्रम को श्रेष्ठ माना है –

चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम्। 2/106/22

ऐसा इसलिए क्योंकि यही आश्रम अन्य तीनों आश्रमों का पालन-पोषण तथा आधार प्रदान करता है। यही अन्य तीनों आश्रमों का मूल है। इन चारों आश्रम व्यवस्था का उद्देश्य हमें इहलोक से तारकर शाश्वत रूप से ब्रह्म से नित्य संयोग करवाना है।

'धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धयर्थं च आश्रमव्यवस्था।'

- **<u>गृहस्थ आश्रम</u>**

सम्पूर्ण श्रुति स्मृति धर्मशास्त्र ग्रंथ एवं अन्य शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत समावर्तन संस्कार द्वारा गुरु से दीक्षा ग्रहण करके स्नातक की उपाधि प्राप्त करके सुयोग्य कन्या से विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। यह आश्रम अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी आश्रम के द्वारा प्राणी अपने त्रिऋण यथा – देवऋण, पितृऋण एवं ऋषिऋण से तथा प्रतिदिन अनजाने में अन्य कीट पशुओं के हत्या दोष से मुक्ति प्राप्त होती है।

'ऋणं है वै जायते योऽस्ति। स जायमान एवं देवेभ्य: पितृभ्य: मनुष्येभ्य:। (शतपथ ब्राह्मण 1/7/3/11)'

अतः परम उद्देश्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हेतु इन तीन ऋणों से मुक्ति के साधन भी मनुस्मृति एवं महाभारत में बताए गए हैं। यथा –

अधीत्य विधिवद् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।

इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।

अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ॥ (मनु 6/36-37)

महाभारत में भी कहा गया है –

ऋणैश्चतुर्भिः संयुक्ता जायन्ते मानवा भुवि।

यज्ञैस्तु देवान् प्रीणाति स्वाध्यायतपसा मुनीन् ।

पुत्रैः श्राद्धैः पितृश्चापि आनृशंस्येन मानवान् ॥ (1/119/17-20)

अर्थात् विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके, धर्मपूर्वक संतानोत्पत्ति करके तथा यथाशक्ति यज्ञ करके ही मोक्ष प्राप्ति संभव है अन्यथा उचित कर्म ना करते हुए मोक्ष प्राप्ति इच्छा करना उसके पतन का कारण बन जाता है।

- **<u>पंचमहायज</u>**

यूं तो यज्ञ त्याग, तपस्या, दान एवं परोपकार का ही द्योतक है किन्तु पंचमहायज्ञ का विधान हमारे ऋषि मुनियों ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य रूप से नियमबद्ध किया है। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश से पूर्व कोई भी व्यक्ति पंचमहायज्ञ नहीं कर सकता एवं हर गृहस्थी को प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने ही चाहिए। वैदिक काल में भी इन पंचमहायज्ञों का अस्तित्व था किन्तु संहिता, औपनिषदिक, सूत्र काल में तथा स्मृति धर्मशास्त्रों में इनका व्यवस्थित रूप मिलता है।

'पंचैव महायज्ञाः । तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञ ब्रह्मयज्ञ इति ।' (शतपथ ब्राह्मण 11/5/6/7)

मनु कहते हैं कि वैवाहिक को प्रतिदिन विधिवत् रूप से पंचमहायज्ञ करने चाहिए।

यथा –

वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्मयथाविधिः।

पंचयज्ञविधानं च पंक्ति चान्वाहिकीं गृही॥ (मनु 3/67)

मनु कहते हैं कि भोजन उपजाने से लेकर भोजन पकाने तक की क्रिया में जितने भी सूक्ष्म- जीव, कीट, अन्य छोटे जीव की हत्या हमारे द्वारा हो जाती है, उन्हीं के पाप से मुक्त होने हेतु एवं त्रिऋण से मुक्ति हेतु हम पंचमहायज्ञ करते हैं। सूक्ष्मजीवों के हत्या के पांच स्थान बताए गए हैं, वे हैं- चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली एवं जल का घट। यथा -

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः। कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥ (मनु 3/68)

क्रम से उन सब हिंसा दोषों के निवारण हेतु ही गृहस्थी को प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने चाहिए।

वे पांच महायज्ञ हैं

1.**ब्रह्म-यज्ञ** – पंचमहायज्ञों में ब्रह्मयज्ञ सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्मयज्ञ का प्राचीन वर्णन सर्वप्रथम शतपथ ब्राह्मण में तथा विस्तृत वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक में मिलता है। ब्रह्मयज्ञ के मुख्यत: दो भाग हैं – स्वध्ययन एवं अध्यापन। ब्रह्मचर्य आश्रम में अध्ययन द्वारा प्राप्त की गई विद्या को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के उपरांत उसी विद्या को अर्थोपार्जन हेतु प्रयोग करना तथा उस ज्ञान का प्रतिदिन अध्ययन एवं अभ्यास करना न सिर्फ हमें समाज के प्रति अपने कर्तव्यों के पालन में सहायक होता है अपितु इससे ऋषि ऋण से भी मुक्ति प्राप्त होती है तथा इहलोक एवं परलोक दोनों ही में योग-क्षेम की रक्षा होती है – यही ब्रह्म यज्ञ का परम् उद्देश्य है।

ब्रह्मयज्ञस्य लक्षणमाह – यत्स्वाध्यायमधीयीतैकामप्यृचं यजु: सामं वा तद्ब्रह्मयज्ञ: संतिष्ठते (तैत्तिरीय आरण्यक 2/10)

स्वस्यासाधारणत्वेन पितृपितामहादिपरम्परया प्राप्ता वेदशाखा स्वाध्यायः। तत्र विद्यमानमृगादीनामन्यतममेकमपि वाक्यमधीयीतेति यत्सोऽयं ब्रह्मयज्ञः॥ (साय०भा०)

ब्रह्म यज्ञ को निष्ठा पूर्वक प्रतिदिन करने से वह याज्ञिक क्रियाओं द्वारा जितना दान दे सकता है, उसके तिगुने फल की प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्य का श्रद्धापूर्वक पालन करते रहने एवं माता-पिता, गुरु आदि की सेवा- शुश्रूषा, उनकी आज्ञा का पालन करना एवं गुरु के चरण कमल के समीप बैठकर वेदाध्ययन तथा शास्त्रों का अध्ययन ब्रह्म यज्ञ के अंग माने गए हैं। इस यज्ञ के द्वारा हम स्वयं को परिष्कृत करते हुए परमात्मा से आध्यात्मिक रूप से नित्य संयोग करते हैं एवं अंत समय में मुक्ति के द्वार खुले होते हैं।

2. **देवयज्ञ**

देव यज्ञ अर्थात् देवताओं को प्रसन्न करना देव यज्ञ है। तैत्तिरीय आरण्यक में देव यज्ञ के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि –

तत्र देवयज्ञस्य लक्षणमाह – यदग्नौ जुहोत्यपि समिधं तद्देवयज्ञ: संतिष्ठते॥(तैत्तिरीय आरण्यक)

पुरोडाशादिहविर्मुख्यं तदलाभे समिधमप्यग्नौ देवानुद्दिश्य्जुहोतीति यत्सोऽयं देवयज्ञः॥(साय०भा०)

गृहसूत्रों एवं धर्मसूत्रों में वर्णित देवताओं की पूजा करने का विधान है। किन्तु अन्य ग्रंथों में इन्हीं देवताओं के पृथक् पृथक् नाम प्राप्त होते हैं। जिन देवताओं की आराधना करने का विधान है, वे हैं – सूर्य, अग्नि, प्रजापति, सोम, इन्द्र, वनस्पति, द्यौ, पृथिवी, धन्वन्तरि, विश्वेदेव, ब्रह्मा आदि। देव विशेष के नाम उच्चारित कर अग्नि में एक भी समिधा अथवा हवि डाली जाती है तो वह देव यज्ञ कहलाता है। मनु एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार, देव पूजा के पश्चात् देव यजन किया जाता है।

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्।

देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानं एव च ॥(मनु २-१७६)

उपेयादीश्वरं चैव योगक्षेमार्थसिद्धये।

स्नात्वा देवान्पितॄंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा॥(याज्ञ०स्मृ० १-१००)

देव यज्ञ के माध्यम से देवताओं को प्रसन्न किया जाता है एवं उसके फलस्वरूप देवता प्रसन्न होने से हमारे आत्मा में ज्ञान के बीज अंकुरित होते हैं तथा हमें अभीष्ट फल की सिद्धि प्राप्त होती है। वैदिक वाङ्मय में ऐसा माना जाता है कि देव सत्यपरायण, उदार, शौर्यवान, गुणवान, ज्ञानवान, दयामय होते हैं एवं उनकी आराधना करने से हम में भी उन्हीं के गुण समाहित होते हैं। देव यज्ञ में हवन का विधान है एवं हवन करने से न केवल वातावरण की शुद्धि होती है अपितु दैवी जगत में प्रतिष्ठित देवता प्रसन्न होकर हमें ईष्ट फल की प्राप्ति होती है। श्री कृष्ण ने भी श्रीमद्भगवद्गीता में यही कहा है –

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः । परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥(श्रीमद्भग्वद्गीता ३-११)

अर्थात् यज्ञ के द्वारा तुमलोग देवताओं को प्रसन्न करो। देवता प्रसन्न होकर तुम्हें इच्छित वर प्रदान करेंगे। इस प्रकार, तुमलोग एक दूसरे की उन्नति करते हुए परम् कल्याण को प्राप्त होओगे। ऐसा ही अग्नि पुराण में भी कहा गया है-

दैवकर्मणि युक्तों हि विभतीदं चराचरम्। अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नन्ततः प्रजाः ॥ (अग्निपुराण २१६-११)

अग्नि में डाली गई आहुति आदित्य देव को प्राप्त होती है, सूर्य देव को प्राप्त होने से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति एवं अन्न समस्त चराचर जगत का पोषण करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्री कृष्ण इसका ही उल्लेख करते हुए कहते हैं –

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।

यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥(श्रीमद्भग्वद्गीता ३-१४)

अर्थात् अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं, एवं अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है। वृष्टि यज्ञ से एवं यज्ञ कर्म से होता है।

देवेभ्यश्च हुतादनाच्छेषाद् भूतबलि हरेत् । अन्नं भूमौ श्वचाण्डालवायसेभ्यश्च निःक्षिपेत् ॥(याज्ञ०स्मृ० १-१०३)

देवयज्ञसे बचे हुए अन्नको जीवों के लिये भूमि पर डाल देना चाहिये और वह अन्न पशु, पक्षी एवं गौ आदिको देना चाहिये।

इस प्रकार, देव यज्ञ सम्पूर्ण चराचर जगत का पोषक एवं आत्म ज्ञान तथा परमात्मा के प्रति भक्ति भाव से पुष्ट करने वाला है। अतः हमें प्रतिदिन देव यज्ञ करना चाहिए।

3. <u>पितृयज</u>

पितृ अर्थात् पाति रक्षति (जो रक्षा करे एवं हमारा पालन पोषण करे)। अतः वह सब पितृ कहलाते हैं जो हमारा पालन पोषण करते हैं, वे हमारे माता पिता, हमारे दादाजी दादाजी, परदादा परदादी आदि सभी पूर्वज आते हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में पितृ यज्ञ का लक्षण का उल्लेख इस प्रकार करते हैं -

पितृयज्ञस्य लक्षणमाह - यत्पितृभ्यः स्वधा करोत्यप्यपस्तत्पितृयज्ञः संतिष्ठते।(तैत्तिरीय आरण्यक)

तत्र पिण्डदानासंभवे जलमात्रमपि पितृभ्यः स्वधाऽस्त्विति स्वधाशब्देन यद्दाति सोऽयं पितृयज्ञः॥(साय०भा०)

पितृ यज्ञ में अर्यमादि नित्य पितर एवं परलोकगामी पूर्वजों का पितर करना होता है जिससे उनके आत्मा की तृप्ति होती है।

पितृयज्ञस्तु तर्पणम् (मनु ३/७०)

पद्म पुराण में भी कहा गया है –

आब्रह्मभुवनाल्लोका देवर्षिपितृमानवः । तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमाता महादयः ॥ नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः । तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया॥(नित्यक०पूजा०पृ०९८/९९)

अर्थात् ब्रह्मलोक से लेकर देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य तथा पिता, माता और मातामहादि पितरों की समस्त नरकों में जितने भी यातनाभोगी जीव हैं उनके उद्धार के लिए मैं यह जल प्रदान करता हूं। इससे पितृ जगत् से सम्बन्ध होता है।अर्यमादि नित्य पितरों की तथा परलोकगामी नैमित्तिक पितरों की पिण्डप्रदानादि से किये जानेवाले सेवारूप यज्ञको पितृयज्ञ कहते हैं।

इस प्रकार पितृ यज्ञ का उद्देश्य हम में हमारे माता पिता एवं पूर्वजों के लिए आदर एवं सम्मान की भावना को बढ़ाना है ताकि हम उन्हें सेवा शुश्रूषा से तृप्त करें।

4. **<u>भूतयज्ञ</u>**

भू धातु में तम् प्रत्यय लगाने से भूत शब्द की व्युत्पत्ति होती है जिसका अर्थ होता है – जीवित प्राणी, जंतु अथवा जीवधारी। इस प्रकार भूत यज्ञ जीवित प्राणियों के लिए किया जाता है। इसे बलिवैश्वदेव यज्ञ भी कहते हैं।

भूतयज्ञस्य लक्षणमाह - यद्भूतेभ्यो बलिँहरति तद्भूतयज्ञ: संतिष्ठते । वैश्वदेवानुष्ठानादूर्ध्वं बहिर्देशे वायसादिभ्यो भूतेभ्यो यद्बलिप्रदानं सोऽयं भूतयज्ञ:॥(साय०भा०)

भूत यज्ञ का पारिस्थितिकीय तंत्र से घनिष्ठ संबंध है। यह पर्यावरण को संरक्षित, शुद्ध एवं संतुलित रखने में अभिन्न योगदान देता है। इसमें कीट, पतंगों, पक्षियों, कुत्तों और कुष्ठ आदि शरीर से लाचार लोगों के लिए पाकशाला में भोजन पकाने के पश्चात् भोजन का एक भाग निकाला जाता है, जो हमारे मन में 'समग्र वैश्विक कल्याण' एवं त्याग की भावना को प्रस्फुटित करता है।

वस्तुत: श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण भी कहते हैं कि –

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।

भुंजते ते त्वधं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता 3/13)

अर्थात् यज्ञ से बचे हुए भोजन को ग्रहण करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है वहीं दूसरी ओर जो लोग केवल अपने लिए भोजन बनाते हैं, वे केवल पाप को ही खाते हैं। इस प्रकार प्रतिदिन हमे भूत यज्ञ के पश्चात् ही भोजन को ग्रहण करना चाहिए।

5. **<u>अतिथि यज्ञ (नृयज्ञ)</u>**

अतिथि यज्ञ पांच महायज्ञों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अतिथि यज्ञ का लक्षण स्पष्ट करते हुए तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है –

मनुष्ययज्ञस्य लक्षणमाह – यद्ब्राह्मणेभ्योऽन्नं ददाति तन्मनुष्ययज्ञ: संतिष्ठते।(साय०भा०)

अतिथि शब्द का अर्थ होता है – अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तदतिथिरुच्यते अथवा कुसुमलताप्रियातिथे अर्थात् प्रिय अथवा स्वागत के योग्य अभ्यागत। वैदिक युग से ही अतिथि हमारे लिए देव रुप में पूजे जाते हैं। कहा भी गया है – 'अतिथि देवो भव:'। अतिथि का आदर भाव से सत्कार करना हमारे संस्कृति में निहित है। अतिथि के आगमन पर यदि हमारे घर में कुछ भी भोजन न हो तो ऐसी

स्थिति में हमें मीठी बोली, विश्राम हेतु आसन अथवा बिस्तर की व्यवस्था करना, जल आदि से सेवा-शुश्रूषा से संतुष्ट करना चाहिए, वरना यदि किसी भी परिस्थिति में अतिथि निराश लौटता है, तो उस घर के सारे पुण्य नष्ट हो जाते हैं। कठोपनिषद् में भी कहा गया है –

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूश्च सर्वान् ।

एतद् वृडते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥(कठो०१।१८)

इस प्रकार, अतिथि यज्ञ हमें उदार, दयावान तथा विनम्र होना सीखता है।

इन पंचमहायज्ञों में नारी की चाहे वह पत्नी के रूप में हो, अथवा माता अथवा बहन, वह सदैव आपके उन्नति की सहयोगी होती है एवं पंचमहायज्ञ का अस्तित्व ही इन्हीं से है।

- **<u>पंचमहायज्ञ में नारी</u>**

गृहस्थ आश्रम की श्रेष्ठता भी नारी से है। गृहस्थ आश्रम की यह श्रेष्ठता इसके सामाजिक मूल्यों पर आधारित है। ब्रह्म यज्ञ से आत्म ज्ञान की प्राप्ति एवं वृद्धि, देव यज्ञ द्वारा सृष्टि का संचालन, पितृ यज्ञ द्वारा माता पिता एवं पूर्वजों का आदर- सम्मान का भाव, भूत यज्ञ द्वारा अन्य जीव जंतुओं के लिए त्याग की भावना तथा अतिथि यज्ञ द्वारा मानव के भीतर उदारता, दया एवं मानवता के भाव का विकास करना ही पंचमहायज्ञ का परम् उद्देश्य है। गृहस्थ आश्रम ही एकमात्र ऐसा आश्रम है जो अन्य तीनों आश्रमों यथा – ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ एवं यति को आश्रय प्रदान करता है तथा इसमें दंपति परस्पर विरोधी – धर्म, अर्थ और काम- इस त्रिवर्ग का एकत्र सेवन करते हैं, तथा पंचमहायज्ञ का प्रतिदिन निष्ठा भाव से नियमपूर्वक पालन करने से अन्ततः मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

महाभारत में भी कहा गया है –

आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः ।

एकतस्ते त्रयो राजन् ! गृहस्थाश्रम एकतः।।(12/12/11)

व्यास स्मृति में भी कहा गया है –

गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः।

सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥(4/2)

- **<u>वैदिक वाङ्मय में नारी की प्रतिष्ठा</u>**

भारतीय संस्कृति में नारी के बिना कोई भी धार्मिक अनुष्ठान, याज्ञिक क्रियाएँ व सामाजिक जीवन की सुन्दर कल्पना भी संभव नहीं है। नारी कर्म में क्रिया एवं धर्म में धुरी के रूप में सदैव उपस्थित है। नारी का तेजस्वी स्वरूप तो वैदिक वाङ्मय स्वयं ही सार्थक करता है क्योंकि यहाँ नारी को ऋग्वेद में यशस्वती एवं संजया के नाम से, यजुर्वेद में देवी, इडा एवं सुभगा तथा अथर्ववेद में सुमंजली के नाम

से सुशोभित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में नारी को योषा पद नारी की पुरुष के साथ सायुज्यपरक का द्योतक है। जिस प्रकार वेदी का यज्ञ में महत्वपूर्ण स्थान है उसी प्रकार योषा का गृहस्थ आश्रम में महत्वपूर्ण स्थान है। 'योषा वै वेदि:' तथा 'योषा वै सरस्वती' जैसे पदों से नारी को सुशोभित किया गया है। यह गृहस्थ आश्रम में नारी के महत्वपूर्ण स्थान का द्योतक है वहीं यह प्रजनन यज्ञ तथा नारी के वैदुष्य का प्रतीक है। 'योषा हि स्रुक्' – इस पद से याज्ञिक अनुष्ठानों में प्रकृष्ट सहायक स्वरूप का द्योतक है।

शतपथ ब्राह्मण में पत्नी के बिना स्वर्ग प्राप्ति संभव नहीं है। 'जायएहि स्वो रोहव:' – अर्थात् पति पत्नी से कहता है कि – हे पत्नी! आओ, स्वर्गारोहण करें।

ऐतरेय ब्राह्मण में जाया को पति का मित्र बताया गया है – 'सखा ह जाया:।'

शतपथ ब्राह्मण में स्त्री को श्री से सम्मानित किया गया है। यथा-

'स्त्री वाऽएषा यच्छीर्न वै स्त्रियं घ्नन्ति।'

अर्थात् नारी को 'श्री' का स्वरूप कहा गया है तथा उसके प्रति किसी भी प्रकार का हिंसा का सर्वथा निषेध किया गया है।

'श्रियै वाऽएतद्रुपं यत्पत्न्य:। ' – यहाँ पर भी स्त्री को श्री से सुशोभित किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में नारी की प्रतिष्ठा पत्नी के रूप में है तथा इस रूप में प्रजोत्पत्ति हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान पर सुशोभित है –

'योषा वै पत्नी योषायै वाऽइमा: प्रजा: प्रजायन्ते।'

अतः नारी पत्नी के रूप में वह पति की सहधर्मिणी एवं सहयोगिनिरुपा है जिसके बिना कोई भी यज्ञीय अनुष्ठान संभव नहीं।

माता के रूप में वह स्वर्ग तथा देवताओं से भी गरिष्ठ एवं सम्मानित हैं –

'मातृदेवो भव:'

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

इस प्रकार, नारी प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान एवं यज्ञिक क्रियाओं को सुफल मनोरथ प्रदान करने वाली, सदैव सम्माननीय होती है। अतः पुरुष को चाहिए कि वो नारी को सदैव प्रसन्न रखे चाहे वह पत्नी रूप में हो अथवा माता अथवा बहन अथवा कोई स्त्री ही क्यों न हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों में वर्णित यज्ञ का आधार नारी ही है, नारी के बिना यज्ञ संभव ही नहीं है। रामायण में भी भगवान श्री राम अपनी अर्धांगिनी सीता के बिना अश्वमेघ यज्ञ नहीं कर सकते थे, जिसका समाधान माता सीता की स्वर्ण मूर्ति को यज्ञ में बिठाया गया था तब जाकर उनका यज्ञ सुफल हुआ था। अतः नारी प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान एवं यज्ञिक क्रियाओं को सुफल मनोरथ प्रदान करने वाली, सदैव सम्माननीय होती है। अतः पुरुष को चाहिए कि वो नारी को सदैव प्रसन्न रखे चाहे वह पत्नी रूप में हो अथवा माता अथवा बहन अथवा कोई स्त्री ही क्यों न हो।

- **<u>संदर्भ-ग्रंथ सूची</u>**

1. महाभारत
2. श्रीमद्भगवद्गीता
3. शतपथ ब्राह्मण

4. तैत्तिरीय आरण्यक
5. ऋग्वेद
6. यजुर्वेद
7. मनुस्मृति
8. याज्ञवल्क्य स्मृति
9. व्यास स्मृति
10. कठोपनिषद
11. भारतीय संस्कृति – डॉ प्रीति प्रभा गोयल
12. संस्कृत हिंदी कोश – वामन शिवराम आप्टे
13. धर्मशास्त्र का इतिहास धर्मद्रुम – आचार्य राजेंद्र प्रसाद पाण्डे
14. भारतीय धर्मशास्त्र का इतिहास – पी वी कंगाले
15. ईशावास्योपनिषद्
16. ऐतरेय ब्राह्मण